Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
UGC Approved Sr.No.64259
Vol - V Issue-II FEBRUARY 2018 ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

जैनाचार्य पार्श्वदेव कृत ग्रंथ ''संगीत समय सार'' में संगीत का तत्व दर्शन

अंजू बोरड
शोधार्थी
राजस्थान विश्वविद्यालय,जयपूर

''संगीत समयसार'' ग्रंथ जैन आचार्य पार्श्वदेव द्वारा (13वी शती ई.) कृत संस्कृत का ग्रंथ है। इतिहास में संगीत पर लिखा गया यह एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। आचार्य पार्श्वदेव ने संगीत के अलग–अलग विषयों पर गहराई से चिंतन–मनन करने के साथ–साथ उनका मौलिक विश्लेषण भी किया है। इस ग्रंथ में संगीतशास्त्र के अलावा नाट्यशास्त्र एवं काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों का भी विशद् निरूपण किया है।

'संगीत समयसार' ग्रंथ का संपादन एवं अनुवाद आचार्य बृहस्पति ने किया है। आचार्य बृहस्पति ने अथक परिश्रम द्वारा संस्कृत के इस ग्रंथ का बहुत ही स्पष्ट ढंग से हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। आचार्य पार्श्वदेव कृत ''संगीत समयसार'' नामक इस ग्रंथ का पहला संस्करण 2006 में तथा दूसरा संस्करण 2009 में आया है।

इस ग्रंथ की भूमिका में विद्यानन्द मुनि ने नाद को संगीत शास्त्र का प्राणपुरूष कहा है तथा अनेक उदाहरणों द्वारा इसे समझाया है। ''शब्द अपने मूलानुसंधान में सफल होकर ही शोभा धारण करता है। नाद का मूलानुसंधान प्रयोजन आत्मसंवित है, इसीलिए यह 'समयसार' है, योगिध्येय है।''[1]

विद्यानन्द मुनि ने इस कृति के विषय में बताते हुए लिखा है कि ''जैनाचार्य पार्श्वदेव कृत यह प्राचीन ग्रंथ भारतीय संगीतशास्त्र के इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। 'संगीत समयसार' इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन युग में जैन साधुओं को विविध कलाओं का विशिष्ट ज्ञान था और उन्होनें इनका मनन, चिन्तन एवं आलोड़न करने के उपरांत मौलिक विश्लेषण किया है। आचार्य पार्श्वदेव की इस कृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगीतशास्त्र के गूढ़ एवं सूक्ष्म सिद्धान्तों एवं उनके प्रयोग का रचनाकार को विशिष्ट ज्ञान था, साथ ही उन्हें काव्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र का परिज्ञान था।''[2]

इस ग्रंथ के विषय में बताते हुए आचार्य बृहस्पति ने डा. हेम भटनागर के शोध प्रबंध ''श्रृंगार युग में संगीत काव्य'' विषय पर जैन रागमालाओं की चर्चा पर उनका कथन प्रस्तावना में उद्धत किया है। डा. हेम भटनागर ने कहा है कि ''जैन मुनि संगीत का ज्ञान भी अधिक मात्रा में रखते थे, ऐसा उनके ग्रंथों का अवलोकन करने से विदित होता है। जैन मुनियों में रागमालाएँ लिखने का बड़ा प्रचार था। कवि अपने किसी तीर्थंकर का यश वर्णन करते समय राग तथा रागनियों में बाँधकर काव्य रचना करता था। जैन कवियों की संगीत–प्रियता असंदिग्ध है। जैन रागमालाओं में हिन्दी रागामालाओं का मूल मानना उचित होगा।''[3]

डा. मुरारी शर्मा ने अपने लेख ''जैन योग में संगीत का स्थान'' में 'संगीत समय सार' को संगीत संबंधी लक्षण ग्रंथों में प्राचीनतम कहा है। उनके अनुसार इस प्रकार हम देखते है कि जैन परम्परा में संगीत की भी एक मौलिक और गहरी अन्वेषणात्मक दृष्टि रही है और इसे साधना का आवश्यक और सहज रूप माना है।''[4]

Dr. M.Vijayalaxmi ने अपनी पुस्तक "Sri Parsvadeva's Sangita Samaysara" के आमुख में लिखा है, “Sangita Samaysara is attributed to parsvadeva, a jain acharya of 13th century. This work is very unique and elaborately describes about certain novel practices prevalent at that time in Sangita-vocal, instrumental music and dance. The 'Thayas' described for instruments is a special feature, untouched by any author. The ‘boles’ (syllables played in percussion instruments), the various playing

techniques of all the four types instruments, and special 'desi' dance postures are some of the unique features of this work, parsva Deva provides a glimpse of the music and dance of his period. The 'Vada nirnaya' has no time barrier as such. It is still applicable to present contests and contestents of music. This work is very unique and describes elaborately certain novel practices prevalant at that time in (vocal and instrumental) and dance".[5]

'संगीत समयसार' ग्रंथ जैनाचार्यों द्वारा रचित संगीत ग्रंथों में प्राचीनतम है। यह जैन आचार्य पार्श्वदेव द्वारा रचित ऐसा प्राचीन ग्रंथ है जो भारतीय संगीतशास्त्र के इतिहास की भी एक अमूल्य निधि है।

श्रीमति डॉ. चेतना व्यौहार ने अपने लेख ''पार्श्वदेव कृत संगीत समयसार : एक परिचय'' में कहा है कि ''13वीं शताब्दी में लिखा गया यह ग्रंथ संगीत की परम्पराओं के साथ–साथ तत्कालीन संगीत में हो रहे परिवर्तनों की प्रामाणिक सूचना भी देता है। अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध यह ग्रंथ इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमे अनेक ऐसे तथ्यों का उद्‌घाटन किया गया है जो संगीत रत्नाकार जैसे ग्रंथों में भी अनुक्त है, और जिन्हें जानना संगीत के प्रत्येक जिज्ञासु के लिए आवश्यक है।''[6]

''भारतीय संगीतज्ञ एवं संगीत ग्रंथ'' में डा. श्रद्धा मालवीय ने भारतीय संगीत के प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रंथों का संकलन किया है, जिसके प्रथम अध्याय ''मुगल पूर्व संगीत एवं संगीत ग्रंथों की सूची'' के अंतर्गत खिजली वंश के संगीत ग्रंथ शीर्षक के अन्तर्गत आचार्य पार्श्वदेव कृत 'संगीत समयसार' को सम्मिलित किया है।[7]

भातखंडे जी ने अपने ग्रंथ ''भातखंडे संगीत शास्त्र'' में बताया है कि मैसूर Government Oriental Library में 'संगीत समयसार' ग्रंथ है।[8]

आचार्य बृहस्पति ने भी ''संगीत समयसार'' की भूमिका में कहा है कि ''जैनों के 'ठाणांगसुत्त', 'रायापसेणीय', 'अनुयोगद्वारसुत्त' इत्यादि ग्रंथों में संगीत संबंधी प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है। जैनाचार्यो द्वारा 'संगीत शास्त्र' पर स्वतंत्र ग्रंथ भी लिखे गए होंगे, किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध 'संगीत समय सार' संगीत संबंधी लक्षण ग्रंथो में प्राचीनतम कहा जा सकता है।''[9]

इस ग्रंथ में आचार्य पार्श्वदेव ने व्यास पराशर, भृगु, यम, सेंवर्त, कात्यायन, आपस्तम्ब, बृहस्पति, लिखित, हारीत, दक्ष, मनु, विष्वग्रीव, गौतम, शंख, दाक्षायण इत्यादि मनीषियों का सादर स्मरण किया है। आचार्य पार्श्वदेव ने पूर्वाचार्यों में भोज, सोमेश्वर और 'प्रतापपृथिवीभुक्' (जगदेकमल्ल) जैसे अजैन आचार्यो का इस ग्रंथ में सादर उल्लेख किया है तथा महाराज जगदेकमल्ल के ग्रंथ 'संगीतचूडामणि' से कुछ सामग्री ज्यों की त्यों उद्‌धृत की है।

डॉ. मुरारी शर्मा के अनुसार ''भारतीय दृष्टि सदैव से समन्वयवादी रही, जैन परम्परा इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। जैन विचार का मूलाधार स्यादवाद, सप्तभंगी–नय और अनेकांतवाद इसी दृष्टि के ज्वलंत और उदात्त रूप है। सत्य सभी दृष्टियों में और सर्वत्र व्याप्त है, आंशिक रूप में ही सही और इसीलिए स्तुत्य और ग्राह्य है।''[10]

दूसरी और चौदहवीं शती में 'संगीत रत्नाकर' के टीकाकार सिंह भूपाल ने 'संगीत रत्नाकार' की टीका में 'संगीत समयसार' और उसके रचयिता पार्श्वदेव का उल्लेख करते हुए 'संगीत समयसार'– के उद्धरण यत्र तत्र दिये हैं। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि पार्श्वदेव ने कुछ ऐसी बातें भी लिखी है कि जो शारंगदेव जैसे महान आचार्य के द्वारा अनुक्त है और संगीत रत्नाकार के विद्यार्थी को जिनसे परिचित होना चाहिए। सिंह भूपाल पञ्चदेवोपासक थे, जैन नही। अजैन संगीतशास्त्रियों के द्वारा दिगम्बर जैन आचार्य पार्श्वदेव के मत का सादर उल्लेख 'संगीत समयसार' और उसके प्रणेता के महत्व का परिचायक है।[11] कुछ स्थानों पर पार्श्वदेव ने जैन दर्शन के अनुसार अपने मत का प्रतिपादन भी किया है शब्द को अनित्य तथा अव्यापक बताकर आपने कोहल के मत का खंडन भी किया है।

आचार्य पार्श्वदेव ने ग्रंथ का आरम्भ मंगलाचरण से किया है जिसमें उन्होनें वासुदेव तथा माँ सरस्वती की स्तुति की है लोक में पहले संगीत शास्त्र का विस्तार करने वाले दतिल, कोहल, आञ्जनेय, सोमेश्वर, तुम्बरू भोज, मतंग और कश्यप आदि पूर्वाचार्यो का स्मरण करके अपने वंश के बारे में बताया है। आचार्य पार्श्वदेव दिगम्बर जैन आचार्य थे, उनके माता–पिता श्रीकण्ठ गोत्रीय आदिदेव और गौरी थे। उनके गुरू महादेवार्य थे। उनकी उपाधि संगीतकार थी।[12]

आचार्य पार्श्वदेव ने संगीत को मार्ग तथा देशी भेद से द्विविध बतलाया है। मार्ग के जातिगान तथा मंद्रगान ऐसे दो भेद बतलाए है। मार्ग को द्विविध बताना पार्श्वदेव की मौलिक अवधारणा है जिसका उल्लेख अन्य किसी ग्रंथ में इस रूप में प्राप्त नहीं होता। स्वर के विषय के अन्तर्गत स्थान, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, तान, साधारण, जाति, राग तथा मंद्र आदि का विस्तार से वर्णन किया है जिसमें उनकी उत्पति, लक्षण तथा भेदों सहित समझाया गया है। यह विवरण मतंग मुनि की 'वृहत्‌देशी' नामक ग्रंथ से पर्याप्त साम्यता रखता है। किन्तु संगीत समयसार में उल्लिखित 66 श्रुतियों की नामावलि का उल्लेख ''वृहत्‌देशी'' में भी उपलब्ध नहीं होता है।

आचार्य पार्श्वदेव ने बताया है कि नाभि में जो 22 श्रुतियों का स्थान है, वह कंठ के द्वारा भी स्पष्टतया दिखलाया जा सकता है, उसे वीणा द्वारा समझाया है। श्रुति के संबंध में मंतग द्वारा कहे पाँच मत भी ग्रंथ में बताए गए है। पार्श्वदेव ने स्वर को अनित्य तथा अव्यापक कहा है।'' जबकि ''कोहल ने स्वर को नित्य, अविनाशी व्यापक और सर्वगत कहा है। यहॉ पार्श्वदेव ने अपना स्वतंत्र मत रख कर कोहल के मत का विरोध किया है। वे कहते है कि ''स्वर अनित्य और अव्यापक है, क्योंकि अपना विशिष्ट अर्थ ही व्यक्त कर सकता है। एक प्रदेश से दूसरे (दूरस्थ) प्रदेश में सुनाई न देने के कारण स्वर अव्यापक है, अन्यथा उसका श्रवण देशान्तर में भी होता, परन्तु ऐसा नही होता है। इच्छा और प्रयत्न का श्रवण जैसा उस समय होता है कालान्तर में भी होता। अतः स्वर अव्यापक और अनित्य है।''[13] इस संबंध में डॉ. मुरारी शर्मा के अनुसार ''पार्श्वदेव ने जिस तर्को के आधार पर स्वर की अव्यापकता और अनित्यता सिद्ध करने का प्रयास किया है वे समीचीन प्रतीत नहीं होते, क्योंकि आज देश–काल गत रूप से सुदूर स्थित स्वर भी हम तक पहुँच पाते है अतः कोहल का मत ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है जिसने स्वर को व्यापक और नित्य माना है। वास्तव में आघात के द्वारा जो विकम्पन्न ध्वनि तरंगों के रूप में वायु में प्रसारित हो गए है, प्रलय की अवस्था तक निरन्तर और गति का कारण बनते रहेंगे और प्रलय की स्थिति में वही व्यक्त स्वर अव्यक्त अनाहत नाद के रूप में समाहित हो जायेंगे। अतः स्वर का समुद्‌भव ही उसे नित्य और व्यापक बना देता है।''[14]

यहां पार्श्वदेव ने स्वरों की नियुक्ति, स्वरों की जातियाँ और स्वरों का रसानुसार विनियोग भी बतलाया है। दो ग्राम तथा प्रत्येक में सात मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया गया है।

मूर्च्छना दो प्रकार की बताई है सप्त स्वर मूर्च्छना तथा द्वादश स्वर मूर्च्छना। अट्‌ठाईस (चौदह सप्त स्वर और चौदह द्वादश स्वर) मूर्च्छनाओं के नाम भी बतलाए गए है। दोनों ग्रामों में उनचास षाडव मूर्च्छनाएँ और पैंतीस औडव मूर्च्छनाएँ इस प्रकार कुल चौरासी मूर्च्छनाएँ बतलाई गई है। संगीत समयसार में औडव मूर्च्छना को पुनः शुद्ध और संसर्गज भेद से द्विविध बताया है और संसर्गज के भी जाति और साधारण के आश्रय से दो भेद कहे गए है। मूर्च्छना के संदर्भ में इस प्रकार का निरूपण अन्य ग्रंथो में प्राप्त नहीं होता।

राग की परिभाषा बताकर आपने कुल तीस राग बताए हैं। सात शुद्ध राग, पाँच भिन्न राग, तीन गौड राग, आठ बेसर राग और सात साधारण राग तथा छः उपराग ग्रंथ में कहे गए है। उल्लेखनीय है कि इन छः उपरागों का समावेश किंचित पाठान्तर के साथ संगीत रत्नाकर में उपरागों के अंतर्गत किया गया है।

द्वितीय अधिकरण में पार्श्वदेव ने मार्ग व देशी संगीत, पिण्डोत्पत्ति, नादोत्पत्ति की प्रक्रिया बतलाई है तथा नाद एवं ध्वनि की उत्पति के विषय में बताया है।

इसके पश्चात शरीर भेदाः में शारीर (शरीर के साथ सहज रूप से उत्पन्न ध्वनि) के चार प्रकार कडाल, मधुर, पेशल और बहुभंगी तथा इनके लक्षण भी बतलाए हैं, यह वर्णन संगीत समय सार में ही प्रथम बार प्राप्त होता है। इन चार भेदों के पश्चात् 'शारीर' के आठ अन्य प्रकार भी कहे गए है, शारीर भेद के पश्चात पार्श्वदेव ने गीत के दो प्रकार बतलाए हैं–अनिबद्ध तथा निबद्ध। आलप्ति को अनिबद्ध के अन्तर्गत कहते हुए उसके भी दो भेद कहे है– रागालप्ति, रूपकालप्ति बताए है। पार्श्वदेव द्वारा आलप्ति के कुछ सर्वथा मौलिक भेद भी ग्रंथ में बतलाए है। जिसमें आलप्ति सोलह प्रकार की होती है। पार्श्वदेव ने इनके लक्षण भी बतलाए है। आलप्ति के आधार स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी से चार अन्वर्थ बतलाए है तथा दत्तिल का अनुसरण करते हुये आपने 13 अलंकार बतलाए है। विशेषज्ञों का उल्लेख व अनुसरण करते हुए गमक के सात भेद कहे है। गीत भेद में गीत के सम, व्यक्त, मधुर तथा विक्रुष्ट इन चार भेदों का विवरण दिया है।

तृतीय अधिकरण के प्रारम्भ में पार्श्वदेव ने भोज और सोमेश्वर द्वारा बताए गए 'ठाय' का वर्णन किया है, जो तत्कालीन भाण्डीकों (गाने बजाने वालो) की भाषा के अनुसार प्रचलित थे। आलप्ति के दो प्रकार रागालप्ति और रूपकालप्ति में से रागालप्ति के बारे मे बताया गया है। इसमें पार्श्वदेव ने अंश या वादी, संवादी, विवादी, अनुवादी, ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, सन्यास, मद्र, तार, षाडव तथा औडव का लक्षण और उनके प्रयोग का क्रम भी बतलाया है। रागाकार और स्थापना के बाद पार्श्वदेव ने 92 ठायों के नाम तथा उन सभी के लक्षण कहे है। उल्लेखनीय है कि संगीत रत्नाकार में इनकी संख्या 96 कही गई है। पार्श्वदेव ने कुछ ठायों के वर्णन में उनका वाद्य संगीत में प्रयोग भी बताया है जैसे वीणा, बाँसुरी आदि। ऐसा वर्ण अन्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं है।

चतुर्थाधिकरणम् में पार्श्वदेव ने प्रबंध के लिए उपयुक्त अनेक राग तथा षाड्व, औड्व और संपूर्ण भेद से उनके नाम कहे है। रागांग, भाषांग, उपांग और क्रियांग के लक्षण बतलाने के बाद सात स्वरों के नाम और स्वर व्यवस्था का उल्लेख किया है। तत्पश्चात 20 रागांग राग, 47 भाषांग राग, 31 उपांग राग एवं 3 क्रियांग राग, ऐसे 101 रागों की नामावली बताई है। 101 रागों का यह वर्णन संगीत रत्नाकर से भिन्न है। इनमें से पार्श्वदेव ने चौदह रागांग, नौ भाषांग, उन्नीस उपांग तथा एक क्रियांग को लोक व्यवहार सिद्ध बतलाया है तथा प्रत्येक राग का विस्तृत वर्णन किया है तथा रागों के लक्षण भी बताए है। 101 रागों का यह वर्णन संगीत रत्नाकार से भिन्न परप्मरा का प्रतीत होता है।

पंचम अधिकरण में आचार्य पार्श्वदेव ने प्रबंध के प्रकार, उनके स्वरूप, उनके अंग तथा उनमें प्रयुक्त लय–ताल का वर्णन किया है। 95 प्रबन्धों का लक्षण सहित वर्णन तथा प्रबन्ध के गान क्रम को सविस्तार समझाया है।

छठे अधिकरण में वाद्य के चारों प्रकारों तत्, अवनद्व, घन और सुषिर का, उनके अलग अलग वाद्य तथा उनकी वादन विधियों का विस्तृत वर्णन किया है। वाद्यों का यह वर्णन अन्य संगीत ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होता। चतुर्विध वाद्य वर्णन के उपरांत पूर्वपरम्परानुसार बीस (20) वाद्य प्रबंधों का लक्षण सहित वर्णन किया है।

सातवां अधिकरण नृत्त/नृत्य से सम्बन्धित है। शिर, वक्ष, कर, पार्श्व, कटि और चरण इन छः अंगो के भेद तथा विभिन्न अंगों के संचालन एवं नृत्य की विभिन्न मुद्राओं को सविस्तार बताया है। नृत्य के साथ बजने वाला संगीत तथा गायन व वादन सभी का वर्णन किया है।

इसके पश्चात नृत्य के समय गीत के अर्थ, भाव एवं ताल का आचरण नर्तक/नर्तकी द्वारा किस तरह किया जाए इस पर अत्यन्त रोचक एवं उपयोगी टिप्पणी देते हुए ग्रंथकार कहते है।

''अङ्गेनालम्बयेद् गीतं हस्तेनार्थं प्रदर्शयेत्।।
चक्षुर्भ्यां भावयेद् भावं पादाभ्यां तालनिर्णयः।।239

अर्थात अंग से गीत का आलम्बन, हाथ से अर्थ का प्रदर्शन, नेत्रों से भाव का भावन और चरणों से ताल का निर्णय किया जाना चाहिए''।[15]

अंत में पांच देशी स्थानक के भेद तथा उनका वर्णन किया है जो सर्वथा नवीन एवं मौलिक है।

आठवें अधिकरण में ताल के लक्षणों का वर्णन है। ताल की दो विधियाँ मनोगा और हस्तगा बताई है। ताल की ये मानगतियाँ पार्श्वदेव की मौलिकता को प्रदर्शित करती है। लय को त्रिविध–द्रुत, मध्य और विलम्बित बताई है। देशी संबद्ध तीन मार्ग–चित्र, चित्रतम, अतिचित्रतम का लक्षण सहित वर्णन किया है। अंत में 101 तालों की विस्तृत नामावली दी है तथा व्यवहार योग्य तालों के लक्षण प्रस्तार सहित बतलाए हैं।

संगीत समयसार के नवम व अंतिम अधिकरण की सामग्री अत्यन्त महत्वपूर्ण कही जा सकती है। 'वाद निर्णय' नामक इस अध्याय में वाद प्रतिवाद एवं निर्णय की प्रक्रिया के आधार पर संगीत शास्त्रकारों, वाग्गेयकारों, गायकों, वादकों एवं नर्तकों के गुणों तथा दोषों पर विस्तार से विचार किया गया है तथा इस विषय में अत्यन्त वैज्ञानिक एवं मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त संगीत शास्त्रज्ञों के गुण–दोष, उनकी कोटियाँ, वाग्गेयकार के गुण दोष, उनकी कोटियाँ, वाग्गेयकारों के मध्य वाद–निर्णय तथा गायिकाओं के मध्य वाद–निर्णय हेतु निश्चित नियमों का पृथक्–पृथक् उल्लेख किया है।

गायक व गायिकायों के गुण दोष, वैणिक और वांशिक के गुण दोष, अवनद्ध वादकों के गुण दोष, पटह तथा हुडक्का वादकों के पाँच प्रकार, नर्तकों के गुण दोष तथा इनके प्रकार तथा नर्तकियों के गुण दोष बतायें है।

इस तरह हम देखते है कि संगीत समयसार ग्रंथ ने अपने नाम के अनुरूप ही संगीत सार रूप में तत्कालीन प्रचलित संगीत सम्बन्धी ग्रंथों में प्रतिष्ठा पाई। 13वीं शती का यह ग्रंथ संगीत सम्बन्धी मौलिक विचार व चिंतन लिए हुए है जिसके सिद्धान्त आज भी उपयोगी है। जैन आचार्य द्वारा लिखित यह ग्रंथ तत्कालीन समय में जैन आचार्यों के संगीत सम्बन्धी ज्ञान का साक्षात प्रमाण है। 'संगीत समय सार' ग्रंथ नाम के अनुरूप ही संगीत सम्बन्धी सिद्धान्तों का सार रूप है।

---

1. आचार्य बृहस्पति/आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत समय सार/पृ. सं.12
2. वही/पृ.स.13
3. वही/पृ.सं.12–13
4. डॉ. मुरारी शर्मा/कला दर्शन, वर्ष 2, भाग तीन, मार्च 1988/पृ.सं 44
5. डॉ. एम. विजयलक्ष्मी/श्री पार्श्वदेव संगीत समयसार
6. प्रो. लिपिका दास गुप्ता/भारतीय संगीत शास्त्र ग्रंथ परम्पराः एक अध्ययन / पृ.73
7. डॉ. श्रद्धा मालवीय/भारतीय संगीतज्ञ एवं संगीत ग्रंथ/पृ.स.33
8. पं. विष्णुनारायण भातखंडे/भातखंडे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भाग–प्रथम)–पृ.स.129
9. आचार्य बृहस्पति/ आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत समय सार /पृ.15
10. डॉ. मुरारी शर्मा/कला दर्शन, वर्ष 2, भाग–3, मार्च 1988/पृ.44
11. आचार्य बृहस्पति/आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत समय सार/पृ.22
12. वही/ पृ.3
13. वही/पृ.66
14. डॉ.मुरारी शर्मा/कला दर्शन वर्ष–2, भाग–3/पृ.45
15. आचार्य बृहस्पति/आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत समयसार/पृ. 263